International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 9 Issue 8 Ser. III || August 2020 || PP 101-103

न्यायिक सक्रियतावाद
(Judicial Activism)

डॉ0 राधिका देवी
असि0प्रोफेसर(राजनीति विज्ञान)
ए0के0पी0(पी0जी0) कॉलिज, खुर्जा
जिला–बुलन्दषहर (उ0प्र0)

न्याय की परम्परागत धारणा– भारत की न्यायव्यवस्था न्याय की परम्परागत धारणा पर आधारित रही है। इस धारणा के अनुसार न्यायालयों का कार्य है, उनके सामने जो विवाद प्रस्तुत हों, उन विवादों का विद्यमान कानूनों के अनुसार निबटारा करना। इस धारणा की कुछ मूलभूत मान्यताएं है। **प्रथम** पीड़ित पक्ष स्वयं न्यायालय के सम्मुख जाकर न्याय की याचना करें। **द्वितीय**, न्यायालय के द्वारा स्वयं को कानून की वैधानिक व्याख्या तथा सम्पूर्ण विवाद के प्रसंग में वैधानिक दायरे तथा दृष्टिकोण तक सीमित रखा जाना चाहिए। यह धारणा इस विचार पर आधारित है कि आर्थिक–सामाजिक न्याय का दायित्व जन प्रतिनिधियों की संस्था संसद का है और आर्थिक–साामाजिक न्याय सामान्यतया न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में नहीं आता है।

न्यायिक सक्रियता का उदय और विकास (न्यायिक सक्रियता न्यायिक पुर्नर्विलोकन की शक्ति का ही विस्तार है)– भारतीय संविधान द्वारा भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना की गई हैं तथा संविधान संविधानवादी शासन में विश्वास करता है। संविधानवादी शासन की मूल मान्यता यह है कि शासन को मर्यादित शक्तियां ही प्राप्त होनी चाहिये। संविधानवादी शासन की इस धारणा के अनुरूप ही भारतीय संविधान में न्यायिक पुर्नर्विलोकन की व्यवस्था की गई है। न्यायिक पुर्नर्विलोकन के आधार पर न्यायपालिका ऐसे किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकती है जो संविधान का उल्लंघन करता है। कालान्तर में न्यायपालिका ने यह अनुभव किया कि उन्हें यह शक्ति भी प्राप्त होनी चाहिये कि यदि कार्यपालिका अकर्मण्यता के कारण अपने कर्त्तव्यों की अनदेखी करे अथवा वह मनमाना आचरण करने की प्रवृत्ति को अपनावे तो न्यायपालिका उसके कर्त्तव्य पालन के सम्बन्ध में आश्यक निर्देश दे अथवा मनमाना आचरण करने की स्थिति में उसे ऐसा करने से रोक दें। इस प्रकार न्यायिक पुर्नर्विलोकन व्यवस्थापिका के मनमाने कानून निर्माण पर रोक लगाने का साधन है तो न्यायिक सक्रियता कार्यपालिका को कर्त्तव्य पालन की दिशा में प्रवृत्त करने या मनमाना आचरण करने से रोकने का साधन है। न्यायिक सक्रियता न्यायिक पुर्नर्विलोकन से आगे का एक चरण है, एक ऐसा चरण जिसे व्यवस्था में निहित गतिशीलता, शासन की कमजोरियों एवं दोषों तथा बदलती हुई परिस्थितियों ने जन्म दिया है। न्यायिक सक्रियता की स्थिति को न्यायपालिका द्वारा उसी देश में अपनाया जा सकता है, जिस देश में न्यायिक पुर्नर्विलोकन की व्यवस्था है। पिछले दशकों में अमरीकी न्यायपालिका ने भी कुछ सीमा तक न्यायिक सक्रियता की स्थिति को अपनाया है। इस प्रकार न्यायिक सक्रियता न्यायिक पुर्नर्विलोकन से आगे का चरण है तथा यह कथन सत्य है कि 'न्यायिक सक्रियता न्यायिक पुर्नर्विलोकन की शक्ति का ही विस्तार है''(Judicial Activisim is only an extension of the power of Judicial Review)।

संविधान लागू किये जाने के बाद वर्तमान समय तक न्याय की परम्परागत धारणा को स्वीकार किया जाता रहा, लेकिन गतिशीलता राज–व्यवस्था का प्राण है। राज–व्यवस्था का प्रत्येक तत्व, प्रत्येक अंग और प्रत्येक संस्था स्वयं में गतिशीलता लिये हुए होती है। 1970 के बाद से ही निरन्तर ऐसी स्थितियां बनीं जिनके आधार पर न्यायाधीशों और समस्त न्याय–व्यवस्था से जुड़ा वर्ग यह सोचने के लिए प्रेरित हुआ कि कानून और संविधान के शब्दों की तुलना में संविधान की भावना और आत्मा को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए और संविधान की आत्मा की रक्षा करने के लिए आवश्यक होने पर तंग कानूनी प्रक्रियाओं के दायरे से बाहर निकलकर संविधान की रचनात्मक व्याख्या का मार्ग अपनाया जाना चाहिए।

प्रारम्भ में 'न्यायिक सक्रियतावाद' को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया। सर्वोच्च न्यायालय से उच्च न्यायालयों को प्रेरणा प्राप्त हुई और उनके द्वारा 'न्यायिक सक्रियतावाद' को अपना लिया गया। इसके बाद कुछ विशेष न्यायालयों और जिला न्यायालयों के द्वारा भी भारी उत्साह भाव से न्यायिक सक्रियतावाद को अपनाने की सफल–असफल चेष्टाएं की गई।[1]

न्यायिक सक्रियतावाद का आषय– न्यायिक सक्रियतावाद का आशय है : ''संविधान, कानून और अपने दायित्वों के प्रसंग में कानूनी व्याख्या से आगे बढ़कर सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों और सामाजिक–आर्थिक न्याय की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए **संविधान और कानून की रचनात्मक व्याख्या करते हुए जन साधारण के हितों की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना।''** इसके अन्तर्गत यह बात सम्मिलित है कि जन सामान्य के हित की दृष्टि से

आवश्यक होने पर शासन को निर्देश देना और शासन की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाना न्यायपालिका का दायित्व है। न्यायिक सक्रियतावाद के एक पक्षधर न्यायाधीश **पी.एन. भगवती** ने 1982 में कहा था : ''सर्वोच्च न्यायालय ने विगत दो वर्षों से देश में विद्यमान सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए समस्त व्यवस्था में सक्रिय दृष्टिकोण अपना लिया है।''[2] परम्परागत रूप में यह सोचा जाता रहा हैं कि न्यायपालिका को राज व्यवस्था में मात्र 'निषेधात्मक भूमिका' ही प्राप्त है, न्यायिक सक्रियतवाद के आधार पर न्यायपालिका को निषेधात्मक भूमिका के साथ–साथ एक सकारात्मक भूमिका, वस्तुतः एक रचनात्मक भूमिका प्राप्त हो जाती है। इसी आधार पर कुछ विद्वान ''न्यायिक सक्रियतावाद' के स्थान पर ''न्यायिक रचनात्मकता'' या ''न्यायपालिका की रचनात्मक भूमिका' शब्दों का प्रयोग करते हैं।

न्यायिक सक्रियता : विविध रूप और मान्यताएं –

न्यायिक सक्रियता एक विविध रूप स्थिति हैं, इसके कुछ प्रमुख पक्ष और मान्यताएं हैंः–

- **जन हितकारी अभियोगों को मान्यता–** परम्परागत धारणा यह रही है कि न्यायालय से न्याय पाने का हक उसी व्यक्ति को है, जिसके मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता हैं किन्तु न्यायिक सक्रियतावाद के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने आंग्ल विधि के उपर्युक्त नियम को परिवर्तित करते हुए यह व्यवस्था की है कि कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे समूह या वर्ग की ओर से मुकदमा लड़ सकता है जिसको उसके कानूनी या संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया हो। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि गरीब, अपंग अथवा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से दलित लोगों के मामले में आम जनता का कोई आदमी न्यायालय के समक्ष 'वाद' ला सकता है। न्यायालय अपने सारे तकनीकी तथा कार्य–विधि सम्बन्धी नियमों की परवाह किये बिना उसे लिखित रूप में देने मात्र से ही कार्यवाही करेगा।

'जनहित अभियोग' न्यायिक सक्रियता का एक प्रमुख पक्ष है। जनहित अभियोग की शुरूआत भागलपुर जेल के विचाराधीन कैदियों के मामले से हुई और पिछले दशकों से जनहित अभियोगों की स्थिति चली आ रही है। जनहित अभियोग के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने जिन विवादों की सुनवाई की, उनमें कुछ प्रमुख हैंः आगरा प्रोटेक्शन होम केस, मुम्बई के पटरी वासियों का मामला, सुनील बन्ना बनाम दिल्ली प्रशासन पुलिस ड्राइवरों का केस, तिलौनिया (अजमेर जिला) के श्रमिकों का केस, रूदल शाह बनाम बिहार राज्य और एशियाड श्रमिक केस, आदि। जनहित अभियोगों में न्यायालय स्वयं अपनी पहल पर सक्रिय नहीं हुए, वरन् सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ताओं ने न्यायालयों को सक्रिय किया।[3]

- **कानूनी न्याय के साथ–साथ आर्थिक–सामाजिक न्याय पर बल–** संविधान लागू किये जाने के बाद लगभग तीन दशक तक यह समझा जाता था कि न्यायालयों का कार्य कानूनी न्याय प्रदान करना है लेकिन न्यायिक सक्रियता के अन्तर्गत संविधान की भावना को दृष्टि में रखते हुए इस विचार को अपनाया गया कि देश के दीन और दलित लोगों के प्रति न्यायालयों का विशेष दायित्व है। अतः न्यायालयों को कानूनी न्याय से आगे बढ़कर आर्थिक–सामाजिक न्याय प्रदान करने का प्रयत्न करना चाहिए।

बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत सरकार– विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने 'बन्धुआ मुक्ति मोर्चा' के पत्र को रिट मानकर हरियाणा राज्य के फरीदकोट जिले की पत्थर खानों में काम करने वाले मजदूरों की दशा की जांच करने के लिए एक आयोग नियुक्त किया और आयोग ने जब अपनी रिपोर्ट में कहा कि 'श्रमिक अमानवीय दशा में कार्यरत है' तब न्यायालय ने इन मजदूरों को मुक्ति के आदेश दिये। इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने शासन को निर्देश दिया कि वह विवाद में 'निर्बल पक्षकार' को कानूनी सहायता प्रदान करें, अन्यथा उसनें लिए अदालत की समस्त कार्यवाही' 'अन्याय का प्रतीक' बनकर रह जायेगी।[4]

- **शासन की स्वेच्छाधारिता पर नियन्त्रण–** न्यायिक सक्रियतावाद का एक रूप और प्रयोजन शासन की स्वेच्छाचारिता पर नियन्त्रण है। संविधान और कानूनों के अन्तर्गत उच्च कार्यपालिका अधिकारियों को कुछ 'स्वविवेकीय शक्तियां' प्रदान की गई है। इन स्वविवेकीय शक्तियों का औचित्य हो सकता है, लेकिन व्यवहार में देखा गया है कि कार्यपालिका अपनी इस स्वविवेकी शक्तियों के आधार पर स्वेच्छाचारिता का मार्ग अपना लेती है। इस पृष्ठभूमि में न्यायिक सक्रियता के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात का प्रतिपादन किया कि विवेकात्मक शक्तियों के अन्तर्गत सरकार की कार्यवाही विवेक सम्मत होनी चाहिए तथा इस कार्यवाही को सम्पन्न करने के लिए जो कार्यविधि अपनाई जायें वह कार्यविधि भी विवेक सम्मत, उत्तम तथा न्यायपूर्ण होनी चाहिए।

- **शासन को आवष्यक निर्देष देना–** 1993–2003 ई0 के वर्षों में तो सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने न्यायिक सक्रियता के आधार पर समस्त राजनीतिक व्यवस्था में पहले से बहुत अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त कर ली। इन न्यायालयों ने जब यह देखा कि जांच एजेन्सियां उच्च पदस्थ व्यक्तियों के विरूद्ध जांच कार्य में ढ़िलाई बरत रही हैं तब न्यायालयों ने विभिन्न जांच एजेन्सियों को अपना कार्य ठीक ढंग से करने के लिए निर्देश दिये और इस बात का प्रतिपादन किया कि **'व्यक्ति चाहे कितना भी बड़ा हो, कानून उससे ऊपर है'** तथा सरकारी एजेन्सी को अपना कार्य निष्पक्षता के साथ करना चाहिए।

भ्रष्टाचार से जुड़े कुछ मामलें में तो न्यायालयों ने जांच की निगरानी का कार्य भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपने हाथ में ले लिया। **'हवाला काण्ड'** में सर्वोच्च न्यायालय और **'चारा घोटाले'** में पटना उच्च न्यायालय ने ऐसी स्थिति को अपनाया।[5]

● **न्यायिक सक्रियतावाद : महत्व और सीमाएं–** न्यायिक सक्रियतावाद के सम्बन्ध में वर्तमान समय की स्थिति के लिए स्वयं न्यायपालिका उत्तरदायी नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय ने **परिस्थितियों से प्रेरित और बाध्य होकर ही न्यायिक सक्रियता की स्थिति को अपनाया था और अपनाए हुए है।** यदि केन्द्रीय और राज्य स्तर की विधायी और कार्यपालिका संस्थाएं अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक बनी रहती यदि इन संस्थाओं ने संविधान के आदर्शों के प्रति आस्था और 'सार्वजनिक हित के प्रति संवेदनशीलता को अपनाया होता तो न्यायिक सक्रियता की कोई आवश्यकता नहीं थी। तथ्य यह है कि विधायी संस्थाएं मात्र अवस्था और शोर शराबे का प्रतीक बनकर रह गई तथा कार्यपालिका ने कुछ मामलों में अकर्मण्यता और अन्य कुछ मामलों में मनमाने आचरण की स्थिति को अपना लिया। इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में तो भ्रष्ट आचरण के कुछ ऐसे काण्ड और घोटाले प्रकाश में आये, जिसमें करोड़ों–अरबों रूपयों की धनराशि निहित थी और जिनमें सन्देह की सुईयां कार्यपालिका के उच्चतम स्तरों तक जाती थीं। राजनीति में अपराधी तत्वों की बड़ी संख्या में मौजूदगी भी नितान्त स्पष्ट हो चुकी थी। ये ऐसी स्थितियां थीं, जिन्होंने सामान्य जनता के लोकतन्त्र, संविधान और समस्त राजव्यवस्था के प्रति विश्वास को आघात पहुंचाया। ऐसी स्थिति में जब न्यायिक सक्रियता की स्थिति देखी गई, तो राज व्यवस्था की कम से कम संस्था नगरपालिका के प्रति जनता का विश्वास बना रहा। जनता ने सोचा कि अभी भी आशा की किरण शेष है और इस बात ने सामान्य जन के मन–मस्तिष्क में राज–व्यवस्था के प्रति विश्वास को कुछ सीमा तक बनाये रखने में योगदान किया। न्यायिक सक्रियता के सम्बन्ध में सामान्य जन का विचार यह है कि, ''न्यायिक सक्रियता के प्रकाश को और आगे तक ले जाये जाने की आवश्यकता है। न्यायपालिका ने बहुत अधिक विश्वसनीयता के साथ लोकतान्त्रिक व्यवस्था और सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों के प्रहरी की भूमिका निभाई है।''[6]

न्यायिक सक्रियता की यह प्रवृत्ति और स्थिति उच्चतम स्तर के राजनीतिज्ञों और सर्वोच्च स्तर पर आसीन समस्त अभिजनों को एक चेतावनी है। न्यायपालिका ने न्यायिक सक्रियता के आधार पर भ्रष्टाचार और अराजकता की हद पार कर रही राजनीति पर लगाम लगाने और उसे पतित होने से बचाने की चेष्टा की है। यदि न्यायिक सक्रियता के आधार पर देश का नैतिक नेतृत्व न्यायपालिका के साथ में चला गया है, तो यह दोष व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का है न्यायपालिका का नहीं। न्यायिक सक्रियतावाद के पक्ष में एक बात यह भी है कि न्यायालय कानून के दायरे से बाहर जाकर कुछ नहीं कर रहे है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जब विधायी संस्थाएं और कार्यपालिका अपने कर्त्तव्यों से विमुख हों जाय तब न्यायिक सक्रियता की स्थिति को अपनाना आवश्यक हो जाता है। **इसके साथ ही साथ एक ऐसी लक्ष्मण रेखा अंकित करने की आवश्यकता है जिससे न्यायपालिका व्यवस्थापिका या कार्यपालिका के दायित्वों को न हथिया ले'।**

संदर्भ सूची :–

1- पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति– पृ. 167–168.

2- "The Supreme Court has adopted a pro-active approach for the last two years, particularly having regard to the perculiar socio-economic conditions prevailing in the country." - Justice P.N. Bhagwati

3- पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति– पृ. 167–168.

4- पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति– पृ. 168.

5- पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति– पृ. 169.

6- "The Torch of judicial activism needs to be carried further. Judiciary has very creditably assumed the role of watching of democratic and ethical values in public life."

-Sudhir Vaishnav : Carry on Judiciary, Economic times; 14 Nov., 1997, P.11.

Reading Books :-

S. M. Sayed, Indian Political System.

M.G. Gupta, Aspects of Indian Constitution, p. 240.

D.D. Basu, Commentaty on the Indian Constitution, pp. 404-405.

T,K. Tope, The Constitution of India, p. 313.

❖❖❖